दैनिक जागरण
व्यावहारिकता के नाम पर आदर्शों की बलि देना अनुचित है

संविधान की फर्जी आड़ में हिंसा

संविधान, कानून और लोकतांत्रिक मूल्यों की फर्जी आड़ लेकर नागरिकता कानून का जैसा हिंसक विरोध हो रहा है उससे यही पता चल रहा कि अराजक तत्व उत्पात पर आमादा हैं। सरकारी एवं निजी संपत्ति को आग के हवाले करने और सड़क एवं रेल मार्ग को बाधित करने वाले इन उपद्रवी तत्वों का दुस्साहस इसीलिए चरम पर है, क्योंकि कुछ राजनीतिक दल उन्हें उकसाने में लगे हुए हैं। पश्चिम बंगाल के बारे में तो यह लगभग पूरी तौर पर साफ है कि ममता बनर्जी सरकार नागरिकता कानून के विरोध में सड़कों पर उतरे अराजक तत्वों को परोक्ष तौर पर शह देने में लगी हुई है। यही कारण है कि वहां मालदा, हावड़ा और मुर्शिदाबाद में व्यापक पैमाने पर हिंसा और आगजनी देखने को मिली। यदि उपद्रवी तत्वों के खिलाफ सख्ती का परिचय दिया जा रहा होता तो यह संभव ही नहीं था कि बंगाल में लगातार दूसरे दिन भी हिंसा देखने को मिलती। यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि संकीर्ण राजनीतिक कारणों से बंगाल में हिंसा को भड़काया जा रहा है। केंद्र सरकार के लिए यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि वह बंगाल में मचाए जा रहे उत्पात के लिए ममता सरकार को जवाबदेह बनाए।

चूंकि नागरिकता कानून विरोधी हिंसा ने दिल्ली में भी अपने पैर पसार लिए हैं इसलिए केंद्र सरकार को अतिरिक्त सतर्कता बरतने के साथ ही सख्ती का भी परिचय देना होगा। विरोध का मतलब नग्न अराजकता नहीं हो सकता। दिल्ली में अराजक भीड़ ने जिस तरह दिन-दहाड़े कई बसों और दोपहिया वाहनों को आग के हवाले किया उससे तो यही लगता है कि सुनियोजित तरीके से नागरिकता कानून विरोधी हिंसा को हवा दी जा रही है। चिंताजनक यह है कि यह खतरनाक काम देश के अन्य हिस्सों में हो रहा है। कई राजनीतिक दल इसके लिए अतिरिक्त मेहनत करते भी दिख रहे हैं। दुष्प्रचार में लिप्त ऐसे दलों की केवल आलोचना ही पर्याप्त नहीं। उन्हें बेनकाब भी किया जाना चाहिए। इसके साथ ही मानवतावादी होने का मुखौटा लगाए उत्पाती तत्वों को यह सख्त संदेश भी देना होगा कि किसी भी सूरत में हिंसा को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। निःसंदेह किसी के लिए भी यह समझना कठिन है कि दिल्ली में जामिया मिलिया विश्वविद्यालय अथवा उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्रों को नागरिकता कानून का विरोध करने की जरूरत क्यों पड़ रही है? आखिर जब यह स्पष्ट है कि इस कानून का भारतीय मुसलमानों से कहीं कोई लेना-देना नहीं तब फिर उसके विरोध का क्या औचित्य? उत्पात का पर्याय बन गए इस उन्माद भरे हिंसक विरोध से कड़ाई से निपटना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि कानून के शासन की हेठी हो रही है।

टकराव अशुभ

ममता बनर्जी सरकार के साथ राज्यपाल जगदीप धनखड़ का टकराव रुकने का नाम नहीं ले रहा है। हालांकि बंगाल में सरकार के साथ राजभवन की खींचतान कोई नई बात नहीं है। इसके पहले केसरीनाथ त्रिपाठी के साथ भी मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का टकराव हुआ था। त्रिपाठी के साथ जितनी तीव्र गति से टकराव पैदा हुआ था उतनी जल्द ही मतभेद दूर भी कर लिया गया। हिंसा के एक मामले में पूर्व राज्यपाल केसरीनाथ त्रिपाठी ने जब मुख्यमंत्री को फोन कर स्पष्टीकरण मांगा तो वह बिफर गईं। सीएम ने त्रिपाठी पर धमकी देने का आरोप लगाया और इससे खुद को एक सीएम के रूप में अपमानित होने की बात कही। कुछ दिनों तक त्रिपाठी और मुख्यमंत्री के बीच खींचतान चली, लेकिन अचानक रक्षाबंधन के मौके पर मुख्यमंत्री ने खुद राजभवन जाकर त्रिपाठी को राखी बांधी और उसके बाद स्थिति सामान्य हो गई। वाममोर्चा के लंबे शासन में तो वामपंथी नेताओं ने राज्यपाल को कभी महत्व ही नहीं दिया। सिंगुर और नंदीग्राम आंदोलन के समय तत्कालीन राज्यपाल गोपालकृष्ण गांधी ममता बनर्जी की बातों को गंभीरता से लेते थे। इस पर वाममोर्चा के नेताओं ने गोपालकृष्ण गांधी के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया था, लेकिन वर्तमान राज्यपाल जगदीप धनखड़ के साथ सरकार का टकराव जिस हद तक चला गया है वह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है। मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने एकाधिक बार धनखड़ पर समानांतर सरकार चलाने का आरोप लगा चुकी हैं। खैर मामला अगर आरोप प्रत्यारोप तक हो तो भी चल सकता है, लेकिन राज्यपाल की अनुमति नहीं मिलने से यदि कोई बिल सदन में पेश नहीं किया जा सके और इस कारण स्पीकर को दो दिनों तक सदन स्थगित कर देना पड़े तो यह गंभीर मामला बनता है। सरकार और राजभवन के बीच इसी तरह खींचतान चलती रही तो राज्य में संवैधानिक संकट की स्थिति पैदा हो सकती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि बंगाल में एक पूर्ण बहुमत की निर्वाचित सरकार है, लेकिन राज्यपाल भी राज्य के संवैधानिक प्रमुख हैं। इस नाते उन्हें कुछ संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं, जिसका सम्मान किया जाना चाहिए। पिछले दिनों जो दो घटनाएं घटीं वह लोकतांत्रिक सरकार के लिए शोभा नहीं देती हैं। पहले राज्यपाल कलकत्ता विश्वविद्यालय गए तो वीसी नहीं थे। दूसरे दिन राज्यपाल विधानसभा गए तो गेट पर ताला लगा था। इतना कुछ होने के बावजूद राज्यपाल ने मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के साथ सारे मुद्दों पर बातचीत करने की इच्छा जताई है तो वार्ता के लिए उन्हें तैयार होना चाहिए। बातचीत से किसी भी समस्या का समाधान संभव है।

प्रतीकों की प्रतिस्पर्धा में फंसी राजनीति

बद्री नारायण

यदि अपने नायकों की विरासत पर दावा करने वाले दलों के पास भाजपा के प्रभावी विमर्श की सही काट नहीं तो तो देर-सबेर उन्हें ये प्रतीक भी गंवाने ही पड़ेंगे

राजनीतिक महानायकों की स्मृतियों का प्रभावी होना इस बात पर निर्भर करता है कि उनके विचारों को आगे बढ़ाने वाली राजनीतिक धारा की शक्ति कितनी प्रभावी है। साथ ही यह भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है कि उक्त राजनीतिक धारा को उस नायक की स्मृति एवं विरासत की उस वक्त कितनी जरूरत है। अक्सर यह देखने को भी मिलता है कि कोई राजनीतिक नायक अपने जीवनकाल में जितना महत्वपूर्ण नहीं होता, वह बाद में कई गुना प्रभावी हो जाता है। बाबा साहब डॉ. भीमराव आंबेडकर के मामले में ऐसा ही हुआ है। अपने जीवन काल में वह एक यथार्थ बने रहे और उसके उपरांत एक मिथक में तब्दील हो गए जो उनके यथार्थ वाले प्रभाव को बढ़ाता गया। जीवनपर्यंत किए कार्यों के कारण ही कालांतर में वह दलित मुक्ति के प्रतीक में परिवर्तित होते गए। ऐसा इसलिए भी हुआ, क्योंकि महाराष्ट्र और देश के अन्य भागों में उनके जीवनकाल में ही लामबंद समर्थकों एवं अनुयायियों का एक वर्ग तो तैयार हो ही गया था। उनके निधन के पश्चात भी दलित समर्थक राजनीतिक दल रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया यानी आरपीआइ उनके विचारों को आगे बढ़ाती रही। हालांकि इस दौरान आरपीआइ का आधार खिसकता गया। इसकी भरपाई आजादी के बाद उभरे दलितों के शिक्षित वर्ग से हुई जो लोग शिक्षा प्राप्ति एवं अपने अधिकारों के लिए आंबेडकर के प्रतीक से अपने संघर्ष की प्रेरणा पाने लगे। इस प्रकार आंबेडकर के प्रतीक को नई ऊर्जा, नई शक्ति एवं नया जीवन मिला। उत्तर भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश में कांशीराम के नेतृत्व में उभरे बहुजन दलित आंदोलन, जिसने आगे चलकर बहुजन समाज पार्टी यानी बसपा का रूप अख्तियार किया, ने आंबेडकर के प्रतीक को और शक्तिशाली बनाया। कांशीराम और मायावती के नेतृत्व में पिछली सदी के नौवें दशक में उभरे बहुजन दलित आंदोलन के तहत दलितों की राजनीतिक गोलबंदी की गति तेज हुई। फलतः उत्तर भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश में आंबेडकर का प्रतीक और ताकतवर बनकर उभरा। इस व्यापक उभार में इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती कि उत्तर भारत खासतौर से उत्तर प्रदेश में बहुजन सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलन ने भी इसे धार देने का काम किया। इस जुगलबंदी से आंबेडकर दलितों के निर्विवाद महानायक के रूप में स्थापित होते गए। इससे यही आशय है कि राजनीतिक नायकों के नायकत्व का विकास उनकी विचारधारा के प्रतिनिधियों की राजनीतिक शक्ति एवं संबंधित विमर्श में उन्हें दी जाने वाली जगह पर निर्भर करता है।

डॉ. राममनोहर लोहिया, पंडित नेहरू के बाद दूसरे राजनीतिक नायक थे। उनका नायकत्व तो उभरा, किंतु भारतीय समाज में पिछड़े वर्ग के समूहों के राजनीतिक सशक्तीकरण, भागीदारी और विकास के लिए किए गए अनेक कार्यों के बावजूद वह आंबेडकर जैसा मुकाम हासिल नहीं कर पाए। इसका मूल कारण यह है कि समाजवादी आंदोलन से उभरे सामाजिक समूहों एवं राजनीतिक दलों ने अपने विमर्श को इस प्रकार आकार नहीं दिया जिसमें लोहिया का नायकत्व विकसित हो पाए। यह ठीक है समाजवादी सरकारों ने तमाम संस्थाओं-स्थानों को लोहिया का नाम दिया, परंतु उन्होंने इस प्रतीक को और शक्तिशाली बनाने के पर्याप्त प्रयास नहीं किए। कहने का अर्थ है कि समाजवादी विचारधारा से उभरे दलों ने सत्ता और ताकत हासिल करने के बावजूद अपने विमर्श को इस प्रकार नियोजित नहीं किया जिससे समाजवादी विचारधारा का महिमामंडन होने के साथ ही लोहिया का नायकत्व भी उभर सके। अगर तुलना करें तो आंबेडकर ने दलितों के लिए जो किया, बिल्कुल वही काम लोहिया ने पिछड़ों को सशक्त बनाने के लिए किया। कुछ ऐसा ही जयप्रकाश नारायण के साथ हुआ। जेपी आंदोलन से निकलकर तमाम नेता राजनीति के आकाश पर तो खूब चमके, लेकिन उन्होंने जेपी को वैचारिक स्मृति का प्रेरक तत्व बनाकर अपना कोई विशिष्ट राजनीतिक विमर्श विकसित नहीं किया।

अवधेश राजपूत

वर्ष 2014 के बाद भाजपा के शक्तिशाली होने के बाद डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी और दीनदयाल उपाध्याय जैसे राजनीतिक प्रतीकों का महत्व बढ़ा है। इसके पूर्व इन प्रतीकों के बारे में शायद लोग ज्यादा नहीं जानते थे। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि भाजपा ने अपने राजनीतिक विमर्श के मूल तत्वों में इनके विचारों को शामिल किया। इसी तरह मदनमोहन मालवीय की गिनती आजादी के पहले दिग्गज कांग्रेस नेताओं में हुआ करती थी, किंतु वर्ष 2014 में भाजपा के सत्ता में आने एवं नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद मालवीय और सरदार वल्लभभाई पटेल का नायकत्व ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। ऐसा इसलिए भी हुआ, क्योंकि भाजपा ने कांग्रेस के ही उन प्रतीकों को अपनाया जिनकी कांग्रेस की पहली पांत के प्रतीकों के आगे अमूमन अनदेखी की गई। भाजपा ने पटेल और मालवीय जैसे कांग्रेसी प्रतीकों को कांग्रेस के शीर्ष प्रतीकों के समानांतर खड़ा करने का प्रयास कर राजनीतिक प्रतीकवाद के मोर्चे पर अपनी शक्ति का दायरा बढ़ा लिया। चूंकि भाजपा के पास अपने ज्यादा प्रतीक नहीं थे, लिहाजा उसने अपने हिसाब से आजादी की लड़ाई के कुछ कांग्रेसी नायकों को अपनाया। हालांकि इसमें भी उसने यह खयाल जरूर रखा कि ये प्रतीक उसकी वैचारिकी के खांचे में भी फिट हो सकें। मिसाल के तौर पर मालवीय को ही लें। वह कांग्रेस में हिंदू पक्षधर राजनीति के समर्थक थे। इसी तरह सरदार पटेल और नेहरू के प्रतीकों में कई ऐसे अंतर्विरोध थे जिन्हें आगे लाकर भाजपा ने अपना राजनीतिक विमर्श गढ़ा। कांग्रेस अपने ही प्रतीकों के भाजपा के पाले में जाने से रोकने के लिए कोई प्रतिरोधी विमर्श खड़ा करने में नाकाम रही। परिणामस्वरूप कांग्रेस अपनी प्रतीक शक्ति के कई तत्वों को गंवाती गई। इस तरह सत्ता के साथ-साथ ये प्रतीक भी उसके हाथ से फिसलते रहे।

इस तरह यह स्पष्ट है कि राजनीतिक नायकों की प्रतीकात्मक शक्ति का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उनके वैचारिक प्रतिनिधि भविष्य में उन्हें किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। उनके विचारों से प्रभावित राजनीतिक पक्ष अपने विमर्श में उन्हें कैसे, कहां और किस तरह स्थान देते हैं। भाजपा ने हाल में तमाम ऐसे प्रतीकों को अपने खेमे से जोड़कर बड़ी शक्ति अर्जित कर ली है। इस प्रकार वह आंबेडकर, मालवीय, सरदार पटेल और विवेकानंद को अपने पक्ष में भुना सकती है। यही नहीं, लोहिया को कांग्रेस विरोध से जोड़कर वह उन्हें भी अपने पाले में लाने के प्रयास करती रही है। अगर इन नायकों की विरासत पर दावा करने वाले दलों के पास ऐसे प्रभावी विमर्श की सही काट नहीं है तो देर-सबेर उन्हें ये प्रतीक भी गंवाने ही पड़ेंगे।

(लेखक गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज के निदेशक हैं)

response@jagran.com

अपने अस्तित्व को सार्थक करता बांग्लादेश

नंदिनी सिन्हा

16 दिसंबर को विजय दिवस हमें बांग्लादेश निर्माण का स्मरण कराता है जिसने कई मुश्किलों के बावजूद एक मिसाल पेश की है

आज से ठीक 48 साल पहले दुनिया के मानचित्र पर एक नए राष्ट्र बांग्लादेश का उदय हुआ था। पश्चिमी पाकिस्तान का हिस्सा रहा यह मुल्क एक लंबे हिंसक संघर्ष के बाद स्वतंत्र देश के रूप में अस्तित्व में आया। भारत ने भी इस नए देश के जन्म में सार्थक और सहयोगी भूमिका निभाई। इससे पहले बांग्लादेश पूर्वी पाकिस्तान के नाम से जाना जाता था। तब पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच राजनीतिक एवं आर्थिक मोर्चे पर होने वाले टकराव के बीज भाषा आंदोलन के दौरान ही पड़ गए थे। देश के राजकाज में पूर्वी पाकिस्तान की नहीं चलती थी। इसलिए वहां के बाशिंदों में नाराजगी स्वाभाविक थी। वर्ष 1948 में यह तल्खी तब और बढ़ गई जब पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली खान ने एलान किया कि देश की राष्ट्रभाषा उर्दू होगी। इस पर पहले से ही नाराज चल रहे पूर्वी पाकिस्तान के बांग्लाभाषियों का आक्रोश उबल पड़ा। इसके बाद संघर्ष लगातार बढ़ता गया। 1958 से 1962 के बीच तथा 1969 से 1971 के बीच पूर्वी पाकिस्तान मार्शल लॉ के अधीन रहा। 1970-71 में पाकिस्तान के संसदीय चुनावों में पूर्वी पाकिस्तान की अवामी लीग ने बड़ी संख्या में सीटें जीतीं और सरकार बनाने का दावा किया, लेकिन पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी के जुल्फिकार अली भुट्टो को वह बात नागवार गुजरी। पूर्वी पाकिस्तान से निकली लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को पश्चिमी पाकिस्तान के हुक्मरानों ने सैनिक अत्याचार से कुचलना शुरू कर दिया। तब वही बलिदानी चेतना सशस्त्र मुक्ति संग्राम के रूप में प्रकट हुई। इस प्रकार 26 मार्च 1971 को बांग्लादेश की स्वतंत्रता की घोषणा के साथ ही मुक्ति युद्ध प्रारंभ हो गया। पाकिस्तानी सेना के दमन के खिलाफ भारत ने बांग्लादेश मुक्ति संग्राम का समर्थन किया था। पश्चिमी पाकिस्तान की सेना का नेतृत्व कर रहे जनरल एके नियाजी ने आखिरकार हार स्वीकार करते हुए अपने 93 हजार सैनिकों के साथ भारतीय सेना के कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इसे इतिहास में सबसे बड़ा सैन्य आत्मसमर्पण भी माना जाता है। इस प्रकार 16 दिसंबर 1971 को पश्चिमी पाकिस्तान के नापाक मंसूबों के नाकाम होने के उपलक्ष्य में यह दिन हर साल विजय दिवस के रूप में मनाया जाता है।

बहरहाल भारत के सहयोग से एक नए देश के रूप में बांग्लादेश का उदय तो हो गया, किंतु नए देश के नवनिर्माण की बड़ी और कड़ी चुनौती सामने थी। बड़े पैमाने पर गरीबी, मानव संसाधन की कमी, सीमित प्राकृतिक संसाधन, अकाल, चक्रवात और बाढ़ जैसी प्राकृतिक चुनौतियां भी बेहद आम थीं। इन सबके बावजूद मुक्ति संग्राम सेनानियों ने बांग्लादेश को 'सोने का देश' बनाने का सपना देखा। रवींद्रनाथ टैगोर के गीत 'आमार सोनार बांग्ला' को जब बांग्लादेश का राष्ट्रगान बनाया गया तो इसके पीछे देश की प्रगति ही राष्ट्रनिर्माताओं के जेहन में थी। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद आज बांग्लादेश ने अपने विकास से दुनिया के सामने एक मिसाल पेश की है। इस देश ने गरीबी में कमी, कम वजन वाले बच्चों की संख्या को घटाने, प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन बढ़ाने, शिशु मृत्यु दर और जननी मृत्यु दर को कम करने में महती सफलता अर्जित की है। पिछले वर्ष बांग्लादेश ने अपना पहला भू-स्थिर संचार उपग्रह, बंगबंधु-1 या बीडी लांच किया।

विश्व आर्थिक मंच यानी डब्ल्यूईएफ द्वारा प्रस्तुत वैश्विक लैंगिक अंतर सूचकांक में बांग्लादेशी सभी दक्षिण एशियाई देशों से बेहतर स्थिति में है। ऐसे सूचकांक की गणना आमतौर पर स्वास्थ्य, शिक्षा, अर्थव्यवस्था और राजनीति सहित चार मापदंडों के आधार पर की जाती है ताकि किसी देश में लैंगिक समानता की स्थिति का पता लगाया जा सके। वर्ष 2018 में स्त्री-पुरुष समानता के मामले में बांग्लादेश 48वें स्थान पर रहा जबकि भारत 108वें स्थान पर था। मौजूदा प्रधानमंत्री शेख हसीना और पूर्व प्रधानमंत्री एवं प्रमुख विपक्षी नेता खालिदा जिया के रूप में देश की दोनों शीर्ष नेता महिलाएं ही हैं। बांग्लादेश ने महिलाओं के रोजगार के साथ आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्तीकरण पर बहुत ध्यान दिया। इसीलिए यहां कामकाजी वर्ग में महिलाओं की हिस्सेदारी 35 प्रतिशत है, जबकि भारत में मात्र 28 प्रतिशत।

घरेलू उद्योगों की बढ़ती क्षमता के कारण बांग्लादेश का निर्यात 2018 के 6.7 फीसदी से बढ़कर 2019 में 10.1 प्रतिशत पहुंच गया। उसके कुल निर्यात में कपड़ा निर्यात का योगदान 84.2 फीसद है। रेडीमेड कपड़ा उद्योग में उसने खासी तरक्की की है। अमेरिका जैसे विकसित बाजारों में बांग्लादेशी कपड़ों की अच्छी-खासी मांग है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बांग्लादेश ने एक उद्यमी देश के रूप में अपनी खास पहचान बनाई है। बांग्लादेश विकास के इस स्तर पर पहुंच गया है कि वह न केवल भारत में निवेश की क्षमता रखता है, बल्कि भारतीय कंपनियों को अपने यहां निवेश के लिए आमंत्रित भी कर रहा है। कुछ महीने पहले बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना इकोनॉमिक फोरम द्वारा आयोजित इंडिया इकोनॉमिक समिट में मुख्य अतिथि के रूप में आई थीं। वहां उन्होंने भारतीय कंपनियों को अपने देश में निवेश का न्योता दिया। इस वक्त चीन की तमाम कंपनियां बांग्लादेश को अपना ठिकाना बना रही हैं। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार इस साल बांग्लादेश की आर्थिक विकास दर के अन्य दक्षिण एशियाई देशों से ज्यादा रहने की संभावना है। 1990 के बाद से बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था चार-पांच प्रतिशत की दर से बढ़ी है। क्रय शक्ति भारिता यानी पीपीपी के संदर्भ में बांग्लादेश की प्रति व्यक्ति आय 1991 में 890 डॉलर प्रति व्यक्ति से बढ़कर 2011 में 2,780 डॉलर प्रति व्यक्ति हो गई। कहना न होगा कि कोई भी देश न तो अपने बड़े क्षेत्रफल से ताकतवर होता है न ही अपनी बड़ी जनसंख्या से, बल्कि उसके विकास की गति ही उसकी ताकत को बयां करती है। बांग्लादेश वही उदाहरण पेश कर रहा है।

(लेखिका बांग्लादेश मामलों की शोध अध्येता हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

जीवन का उद्देश्य

प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात से मिलने एक बार उनका एक अनुयायी उनके घर पर आया। दरवाजे पर दस्तक के बाद जब सुकरात अपने घर से बाहर निकले तो शिष्य ने बड़ी विनम्रतापूर्वक उनसे आग्रह किया, मैं सुकरात के विचारों और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बहुत दूर से उनसे मिलने आया हूं। क्या मुझे उनके दर्शन हो सकते हैं? सुकरात थोड़ी देर के लिए शांत रहे और फिर बोले, सुकरात? आप किस सुकरात की बात कर रहे हैं? आज तक तो मैं खुद सुकरात को नहीं पहचान पाया हूं। माफ कीजिए मैं आपको उनके दर्शन नहीं करा सकता हूं। सुकरात के दर्शन का मुरीद बेचारा याचक बड़ी निराशा के साथ वापस लौट गया।

सुकरात का उत्तर आसान था, किंतु उसके निहितार्थ काफी सारगर्भित हैं। कभी अपने दिल पर हाथ रखकर गंभीरता से इस प्रश्न के उत्तर की तलाश करें कि क्या हम खुद को पहचान पाते हैं? प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने कहा था, मानव जीवन में केवल दो ही दिन महत्वपूर्ण होते हैं। पहला दिन जब उसका जन्म होता है और दूसरा जब वह यह जान लेता है कि आखिर उसके जन्म का उद्देश्य क्या है, किंतु दुर्भाग्यवश जीवन धारण करने के बाद हम अपने जन्म के पवित्र उद्देश्यों को पूरी तरह से भूल जाते हैं और अनमोल मानव जीवन को व्यर्थ गंवा देते हैं। यहां पर एक अहम प्रश्न यह उठता है कि आखिर हम कौन हैं और हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है?

भौतिक सुख-सुविधाओं और बेशुमार धन-संपत्ति को बटोरने की अंधी चाहत में हम मानवता के दुख और उसके आंसू पोंछ नहीं पाते हैं। लोभ, तृष्णा, अहिंसा, असत्य वचन सरीखे अमानवीय कृत्यों में जीवन के जो अनमोल क्षण व्यर्थ होते हैं, वे जीवन को सच्चे उद्देश्यों से भटकाते हैं। दुखी और असहाय मानव के दुख और दर्द के आंसू पोंछकर उनके चेहरे पर खुशियां लाने की कोशिश ही सच्ची मानवता है। जीवन का सच्चा उद्देश्य है। इसे समझने के लिए हमें सबसे पहले स्वयं और अपने जीवन के अर्थ पर विचार करना होगा।

श्रीप्रकाश शर्मा

खतरनाक होता सेल्फी का शौक

सुधीर कुमार

दुनियाभर में 2011 से 2017 तक 259 लोग सेल्फी लेने के चक्कर में अपनी जान गंवा बैठे हैं। इसमें भारत सबसे आगे है

यूं तो सेल्फी का इतिहास करीबन पौने दो सौ साल पुराना है, लेकिन 21वीं सदी के मौजूदा दशक में इसकी लोकप्रियता चरम पर पहुंच गई है। माना जाता है कि दुनिया की पहली सेल्फी 1839 में अमेरिका के रॉबर्ट कोर्नेलियस नामक एक व्यक्ति ने ली थी। उन्होंने यह सेल्फी अपने कैमरे से ली थी और उस सेल्फी को लेने में उन्हें तीन मिनट लगे थे। आज स्मार्टफोन के जरिये चंद सेकेंड में सेल्फी लेना मुमकिन हो गया है। हालांकि संवेदनशील, खतरनाक और विपरीत परिस्थितियों में सेल्फी लेने का शौक एक नई मुसीबत बन कर सामने आई है!

दरअसल रोमांचक और विस्मयकारी सेल्फी लेने के लिए लोग कई तरह के बेवकूफी भरे प्रयोग करते रहते हैं। इससे कई बार दुर्घटना और मौत को असमय आमंत्रण मिल जाता है। आभासी दुनिया में लोकप्रियता हासिल करने का यह तरीका बहुत घातक साबित होता जा रहा है। चलती ट्रेन, झरना या डैम के किनारे, नदी या समुद्र में नहाते समय, चिड़ियाघर या सड़क पर सेल्फी लेने का शौक नासूर बन चुका है। सेल्फी लेते समय व्यक्ति का सारा ध्यान फोन पर केंद्रित हो जाता है और अच्छी से अच्छी सेल्फी लेने के चक्कर में लोग मौत की दहलीज पर पहुंच जाते हैं! इंडिया जर्नल ऑफ फैमिली मेडिसीन एंड प्राइमरी केयर की एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनियाभर में 2011 से 2017 तक 259 लोग सेल्फी लेने के चक्कर में अपनी जान गंवा बैठे हैं। इसमें 159 लोगों की मौत के आंकड़े के साथ भारत सबसे आगे है। इसी अवधि में अमेरिका में 23, रूस में 16, जबकि पाकिस्तान में केवल 11 लोगों की मौत हुई। सेल्फी के लिए मौत के मुंह में जानबूझकर जाना लापरवाही, आत्ममुग्धता और आभासी दुनिया के प्रति अतिरेक प्रेम की निशानी है। यह एक घातक प्रवृत्ति है, जिसे रोकना बेहद जरूरी हो गया है।

इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मेंटल हेल्थ एंड एडिक्शन में प्रकाशित एक शोध में कहा गया है कि अगर किसी को दिनभर में तीन से ज्यादा सेल्फी लिए बिना मन नहीं भरता है तो वह एक डिसऑर्डर का शिकार है, जिसे मनोवैज्ञानिक भाषा में 'सेल्फाइटिस' कहा जाता है। अध्ययन के मुताबिक सेल्फाइटिस बीमारी के तीन स्तर होते हैं। पहला, दिन में 3 सेल्फी लेने की आदत होना, लेकिन सेल्फी सोशल मीडिया पर पोस्ट न करना। दूसरा, सेल्फी सोशल मीडिया में शेयर करना शुरू कर देना। तीसरा, हर समय अपनी सेल्फी सोशल मीडिया पर पोस्ट करने की कोशिश करना। ऐसे लोग दिन में कम से कम छह फोटो पोस्ट करते हैं। सेल्फी की लत के शिकार लोग किसी भी परिस्थिति में सेल्फी लेने का प्रयास करते हैं, जिससे कई बार उन्हें परेशानी का सामना करना पड़ता है!

सेल्फी लेना सामान्य स्थिति है, परंतु यह ध्यान रहे कि अनुकूल परिस्थितियों में ही स्वयं की तस्वीरें ली जाएं। जिन स्थानों पर नो सेल्फी जोन का बोर्ड टंगा हो, वहां सेल्फी लेने का प्रयास नहीं करना चाहिए। खुद को मुसीबत में डालकर सेल्फी लेना अच्छी बात नहीं है। जीवन बहुत अनमोल है। इसकी महत्ता हमें समझनी होगी।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

राष्ट्रहितैषी कानून का बेजा विरोध

संजय गुप्त ने अपने आलेख 'नागरिकता कानून पर दुष्प्रचार' में पड़ोसी मुस्लिम देशों में धर्म के आधार पर उत्पीड़ित किए जाने वाले वहां के अल्पसंख्यक सिख, बौद्ध, जैन, पारसी आदि गैर-मुस्लिम धर्मावलंबियों को मानवीय आधार पर भारत की नागरिकता देने संबंधी कानून के दुराग्रही विरोध को रेखांकित करते हुए इसे दुष्प्रचारित करने की जो बात की है, वह एकदम सही है। इस देश के मुट्ठी भर लोगों द्वारा निहित स्वार्थवश एक राष्ट्रहितैषी कानून का जिस तरह से बेजा विरोध किया जा रहा है वह न केवल उनके हिंदूविरोधी एजेंडे का एक हिस्सा है, अपितु इस कानून को वे मुस्लिम हितों के विपरीत प्रचारित कर इसके विरुद्ध एक संप्रदाय विशेष की भावनाओं को भड़काने का दुष्प्रयास भी कर रहे हैं। जबकि देश के गृहमंत्री और प्रधानमंत्री द्वारा बार-बार यह स्पष्ट किया जा रहा है कि यह कानून न तो किसी धर्म विशेष का पक्षधर है और न ही विरोधी, बल्कि विशुद्ध रूप से उन शरणार्थियों को भारत की नागरिकता देकर एक सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार देने वाला है जो अपने जीवन और धर्म दोनों की रक्षा के लिए भारत के अंदर शरणार्थियों का बेगैरत जीवन जीने को विवश हैं। इस देश में अवैध रूप से रहने वाले ऐसे उत्पीड़ित और मजबूर लोग ही नहीं हैं, अपितु वे घुसपैठिए भी हैं जो बेहतर जीवन जीने के लिए अवैध रूप से भारत में घुसकर यहां के संसाधनों का दोहन कर रहे हैं। मोदी सरकार नागरिकता कानून लागू करके ऐसे सभी घुसपैठियों को चिन्हित करना चाहती है जो देश के ऊपर किसी बोझ से कम नहीं हैं। आजाद भारत में पहली बार नागरिकता कानून के जरिये अवैध घुसपैठियों और मजबूर शरणार्थियों में अंतर करके भारत की जनसांख्यिकी को दुरुस्त करने का जो अभूतपूर्व कार्य किया जा रहा है, वह स्वागत योग्य है। ऐसे में किसी भी स्तर पर इस राष्ट्रहितैषी कानून का विरोध अपरोक्ष रूप से राष्ट्रीय हितों का विरोध है, जिसको समझने की जरूरत है।

pandeyvp1960@gmail.com

शरीर में प्लास्टिक

वर्तमान में मनुष्य के शरीर में निर्धारित मानक से 40 गुना ज्यादा प्लास्टिक का केमिकल पाया जा रहा है। कारण हमारे खान-पान में तमाम ऐसे तत्व हैं जो प्लास्टिक में पैक होकर व्यवहार में हमें उपलब्ध हैं, इसका दुष्परिणाम यह है कि शरीर में मानक से अधिक प्लास्टिक के केमिकल हमारे शरीर में पाए जा रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार प्लास्टिक की पैकिंग में आने वाला खाना, कोल्ड ड्रिंक, चाय, दूध, दही, मसाले, अचार, सब्जी आदि सैकड़ों ऐसी चीजें हैं, जो हमें प्लास्टिक के जार/थैलियों आदि में मिलती हैं। उस खाद्य पदार्थों को खाकर प्लास्टिक का केमिकल हमारे शरीर में पहुंच रहा है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इसलिए हर किसी को इसके खिलाफ जागरूक होना होगा।

pramodaggoldiee@gmail.com

मूल्य आधारित शिक्षा की जरूरत

तेलंगाना की पशु चिकित्सक की दुष्कर्म के बाद हत्या और उसके ठीक बाद उत्तर प्रदेश में उन्नाव की बेटी को जिंदा जलाकर मारे जाने से पूरे देश में आक्रोश फैला है। ऐसे में बड़ा सवाल है कि इस तरह की निंदनीय घटनाएं कब तक होती रहेंगी? हमारे सामाजिक तंत्र के बुनियादी चरित्र में परिवर्तन तभी आ सकता है जब हम परिवार एवं समाज पर खुद का ध्यान केंद्रित करेंगे। महिलाओं और बच्चों के प्रति बढ़ते अनाचार से सिद्ध होता है कि हम अभी भी सभ्य समाज की परिकल्पना से कोसों दूर हैं। मौजूदा समाज में लगातार बढ़ती आपराधिक प्रवृत्ति के लिए पूरी तरह से शासन व्यवस्था को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। एक शिक्षित एवं मूल्य आधारित सामाजिक जीवन पद्धति के लिए हमें अपनी भावी पीढ़ी को धर्मनिष्ठ बनाना पड़ेगा।

हितेंद्र डेढ़ा, चिल्ला गांव, दिल्ली

सभ्य ढंग से हो आलोचना

राहुल गांधी के दुष्कर्म पर बयान को लेकर पूरे देश में उनकी आलोचना हो रही है। राहुल एक बड़ी पार्टी के जिम्मेदार नेता हैं। इस तरह की बातें उनकी शख्सियत के अनुरूप नहीं हैं। इससे उनकी ही छवि को नुकसान हुआ है। सरकार तथा कानून-व्यवस्था की आलोचना सभ्य ढंग से की जाए तो अधिक असरदार होती हैं। उनको कुछ तो अ